International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, RJIF (Impact Factor) 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 01-03

गीतिकाव्य परम्परा और सूरदास

डॉ. शिवदत्त शर्मा पूर्व

अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय ढलियारा कांगडा हिप्र

गीतिकाव्य का अर्थ एवं स्वरूप–

मनुष्य पुरातन काल से ही संगीत–गीत प्रेमी रहा है। गीति काव्य परम्परा बहुत पुरानी है।, ऋृग् वेद की ऋृचाएं गेय होने से यह प्रमाणित होता है कि पुरातन काल से ही गीत की परिपाटी रही है। यह भी माना जाता है कि पहला वाक्य श्लोक के रूप में ही अभिव्यक्त हुआ। महर्षि वालमीकि ने भी इसे प्रमाणित किया है–मा निषाद् प्रतिष्ठां गमः.. इसी तथ्य का सूचक है। अनेक विद्वानों ने गीति काव्य की अलग अलग परिभाषाएं दी हैं। इस मतानुसार कुछ विद्वानों के विचार विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं–

1. डॉ मुंशी राम शर्मा के अनुसार– गीति काव्य की शैली आत्माभिव्यंजन की अतीव उत्कृष्ट शैली है। मुक्तक काव्य रचना के लिए अत्यंत उपयुक्त है। इसे भाव की एकएक श्रृंखला को सुसज्जित गुलदस्ते के रूप में सजाया जा सकता हैं।
2. महादेवी वर्मा के अनुसार– सुखदुख की भावावेशमयी अवस्था, विशेषकर गिने चुने शब्दों में स्वर–साधना के अनुरूप चित्रण कर देना ही गीतिकाव्य है।
3. डॉ दशरथ ओझा के अनुसार– जिस काव्य में एक तथ्य या एक भाव के साथ साथ एक ही निवेदन ,एक ही रस, एक ही परिपाटी हो वह गीति काव्य है।
4. बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार– गीतिकाव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत को अपने अन्तः करण में ले जाकर उसे भावों से रंजित करता है।

2 हिन्दी साहित्य में गीतिपरम्परा

वैदिक काल अथवा उससे भी पूर्व गायन की परम्परा मिलती है। वेदों की सारी ही ..ऋृचाएं गेय हैं, सामवेद तो गायन का सन्दर्भ ग्रंथ कहा जा सकता है। इससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि गीत रचने की प्रवृत्ति आरम्भ से ही भारत में थी। आज भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है और भविष्य में भी इसके निर्वाध गति से चले रहने की सम्भावना है। सामवेद के बाद लौकिक संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ठ गीतिकार के रूप में जयदेव का नाम आता है।उनकी प्रसिद्ध रचना गीतगोबिन्द गीति काव्य की अनूठी कृति है।

गीतगोविन्द में ईश्वर की स्तुति की गई है तथा दूसरी ओर अलौकिक प्रेंम की अभिव्यंजना भी की गई है। इस रचना में लौकिक प्रेम को बडे ही सरस एवं स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि अनेक विद्वान इस पर अश्लीलता का आरोप लगाते हैं। वास्तविकता यह नहीं है क्यों कि जयदेव लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करना चाहते थे।[1]

इसके उपरान्त हमें यह परम्परा आगे बढती हुई दिखाई देती है। वीर गाथा काल के वीर गीतों में इसके दर्शन होते हैं। इन वीर गीतों में चन्दबरदाई जैसे कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के शौर्य, पराक्रम, ऐश्वर्य तथा प्रेम आदि का वर्णन करने के लिए गीतों को ही माध्यम बनाया।

उसके आद मैथिल कोकिल विद्यापति का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्हें हिन्दी में अभिनव जयदेव कहा गया हे। विद्यापति की काव्य कला उच्च कोटि की थी। वे भावुक एवं रससिद्ध कवि होने के साथ साथ अच्छे संगीतकार भी थे। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। उनके काव्य में शब्द चयन सर्वथा सटीक और भावानुकूल है। इनके मुक्तक सुन्दर एवं गेय कला से परिपूर्ण हैं।

डॉ गंगा सहाय प्रेमी लिखते हैं कि इनके मुक्तक गीतों में कवित्व के विशद् दर्शन होते हैं। इन्होंने काव्य में जो चित्र खींचा है वह सजीव है तथा गेय विशेषता के कारण और भी सुन्दर उभर कर सामने आया है।

उसके उपरान्त भक्ति काल में नामदेव, दादू, नानक, रैदास, सूरदास, तुलसीदास और मीरा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कबीर के पद गेयता की दृष्टि से प्रायः साधुसन्तों में ही अधिक गाए जाते थे। अन्य साधारण लोग भी इनके पदों को गाते थे। कबीर आदि सन्तों के पदों का विषय गूढ होने के कारण तथा उनमें हठ योग आदि का मिश्रण होने के कारण अधिक लोक प्रिय नही हुए फिर भी कबीर आदि सन्तों को गीति परम्परा को अपने पदो के माध्यम से आगे बढाने का श्रेय तो जाता ही है।

भक्ति काल के कवियों में गीति काव्य परम्परा में जो स्थान सूरदास को प्राप्त है, वह किसी अन्य कवि को नहीं। सूरदास नेत्र हीन होते हुए भी अपने पदों की स्वयं रचना करते थे। उनके पदों को गाते हुए सुनना लोगों की दिनचर्या बन गई थी। कीर्तन करते हुए सूरदास अपने पदों को गाकर संतोष प्राप्त करते थे। वे उच्च काटि के भावुक तथा रससिद्ध कवि थे।उनकी प्रसिद्ध रचना सूरसागर गीतिकाव्य का अनूठा ग्रंथ है। सूरदास को विविध रागरागनियों का समुचित ज्ञान था। उन्होंने अनेक नए रागों की रचना भी की थी।[2]

भारतीय विद्वानों के अनुसार गीति काव्य के निम्न लिखित अनिवार्य तत्व है। सूर के काव्य में इन तत्वों को सहज ही देखा जा सकता है–

1 वैयक्तिकता

वैयक्तिकता गीतिकाव्य का प्रधान तत्व हैं। इसे आत्माभिव्यंजना भी कहते हैं। वैयक्तिकता का अभिप्रायः कवि की स्वछन्द मनोवृत्ति से है। इस तरह गीति काव्य में कवि अपने निजी जीवन में और जगत से मिलने वाले दुख–सुख, करुणा–आनन्द, हर्ष–शोक, हास–रुदन आदि को अभिव्यक्त करता हैं। उसका मन इन सभी भावनाओं से छलकता है। जब ये सभी अनुभूतियां कवि को बहुत अधिक उद्वेलित और विचलित करने लगती हैं, तब उसके हृदय से निकलने वाले मनोभाव संगीत की मधुर लहरी के साथ मिलकर गीतिकाव्य का रूप लेते हैं।[3]

सूरदास ने सूरकाव्य में वैयक्तिकता को मुख्य रूप से दास्य व विनय के पदों तथा दसवें अध्याय के पदों में अधिक मुखरित हो कर व्यक्त किया है। सूरदास ने अपने दैन्य भाग को स्वछन्द रूप से निम्न लिखित पद में अभिव्यक्त किया है–

> अब मैं नाच्यौं बहुत गुपाल।
> काम, क्रोध, कौ पहिरि चोलना, कण्ठ विषय की माल।

महामोह के नूपुर बाजत, निंदा–शब्द रसाल।
भ्रम–भोयो मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यौ, लोभ–तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास के सबै अविद्या, दूरि करौ नन्दलाल।

सूरदास स्वछन्द प्रकार के कवि थे। उन्होंने निष्कपट भाव से विनय और भक्ति परक पदों में अपने भावों को व्यक्त किया है। कभी वे अपने आप को जहाज का पंछी कहते हैं तो कहीं अपने इष्ट देव को ही चुनौति दे देते हैं कि मुझ जैसे पतित को तार कर अपना नाम पतित पावन सिद्ध करो।
इसी तरह दसवें अध्याय में भी कवि की आत्माभिव्यंजना प्रकट हुई है।

2 संगीतात्मकता

यह तो सर्व विदित ही है कि सूरदास न केवल उत्कृष्ट गायक थे अपितु उन्हें समस्त राग रागनियों का भी समुचित ज्ञान था। संगीत गीतिकाव्य का प्राण होता है। संगीत में ही यह शक्ति है कि वह सुनने वाले के मन मस्तिष्क पर असर करती है उसे मन्त्रमुग्ध करने की शक्ति रखती है। सूर तो इस कला में सिद्धहस्त थे, उनके पदों में भावों के अनुकूल शब्दावली के दर्शन होते हैं। इस निम्न लिखित पद में शब्द को थोडा तोड मरोड कर पेश करके सूरदास ने भाषा में मधुरता भरने का सफल प्रयास किया है। इस पद में भ्रमर को भंवारे और अवगुण को औगुण बना कर पद में मधुरता पैदा की है–

तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भंवारे।
....
हमारे प्रभु औंगुन चित न धरौ
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।

सूरदास का शब्द चयन उत्कृष्ट संगीत से मिल कर अभूतपूर्व मधुर रस का जनक सावित हुआ है। डॉ मनमोहन गौतम ने इस सम्बन्ध में लिखाहै– सूर के पदों में कवित्व संगीत का दास नहीं है। संगीत कवित्व का सहायक बनकर आया है।
सूर ने रागरागनियों के अच्छे ज्ञाता होने के कारण विषय के अनुकूल रागरागनियों का चयन किया है। जहां हर्ष और उल्लास है वहां राग धनाश्री, राग कान्हरां, राग तोडी, आदि का प्रयोग किया है। परन्तु विप्रलम्भ तथा गम्भीरता के स्थलों पर वह राग जैतश्री, राग सारंग, ग्रग मल्हार आदि का प्रयोग करते हैं।[4] कई जगह उन्होंने नए रागों का भी प्रयोग किया है–

राग ललित

उठे नंदलाल सुनत जननी मुख बानी।
आलस भरे नैन सकल सोभा की खानी।
गोपी जन विकसित ह्वै, चितवति सब ठाढी।
नैन करि चकोर, चंद –बदन प्रीति बाढी।

यही नहीं श्रृंगार के प्रसंग में राग रामकली, आसावरी, बिलावल, बसन्त, नट, सारंग, गुजरी राग आदि का भी सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है।

3 रागात्मकता

गीति काव्य का प्राणतत्व वास्तव में राग है। सूर का काव्य रागों से अटापटा है। सूरदास स्वयं उच्च कोटि के गायक थे उन्होंने बडी सोचसमझ के बाद किसी राग का चयन किया है। जहां आवश्यक हुआ सूरदास ने नई राग रागनियों की भी रचना की है। एक अन्य विशेषता यह है कि उन्होंने समय के अनुसार रागरागनियों का चयन किया है। जो राग प्रातः गाने योग्य है उसमें उन्होंने दोपहर तथा शाम को गाए जाने वाले पदों की रचना नहीं की। श्री कृष्ण को जगाने के लिए सूरदास ने राग ललित और राग भैरव का प्रयोग किया है ,जो उनके रागों के बारे में ज्ञान को प्रमाणित करता है–

जागिए गोपाल लाल आनन्द निधि नन्दलाल।
जसुमति कहै बारबार भोर भयो प्यारे।

इसी तरह राग सारंग प्रातः नौ बजे से दोपहर दो बजे तक गाया जाता है। श्री कृष्ण के खेलने के इस समय को इसी राग में निबद्ध करके सूरदास ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उन्हें रागगायन ही नहीं अपितु राग–शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। श्री कृष्ण की खेल–क्रीडा आदि का वर्णन देखिए–

खेलत में को काको गुसैयॉ
हरि हारे जीते सुदामा, बरवस हि कत करत रिसैयां।
जातिपाति हमतै बड नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।

4 एक भाववाभिव्यक्ति

गीति काव्य की विशेषता है कि इसमें सदैव एक ही भाव निहित रहता है। यही कारण है कि यह विधा दूसरों से अलग होती है। सूरदास के पदों में भी यह गुण दिखाई देता है। दूसरे पद में अलग भाव दिखाई देता है।सूरदास ने विभिन्न भावों में विभिन्न पदों की रचना की है। श्रृंगार और वात्सल्य रस उनके बेहद लौक प्रिय रस हैं,तथा उन्होंने इन्हीं रसों को ही अधिकतर महत्व दिया है।[5]
इसी प्रकार श्री कृष्ण की बाललीलाओं से सम्बन्धित पदों में एक ही भाव पर पद की रचना की गई है। भ्रमर गीत के प्रत्येक पद में भी एक ही भाव का विशेष वर्णन किया गया है।अगर एक पद में गोपियों के विरह का वर्णन मिलता है तो दूसरे में किसी अन्य भाव का। गोपियों की विरह वेदना का वर्णन इस पद में द्रष्टव्य है–

उधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग को अवराधै ईस।
इन्द्री सिथिल भई, केसब बिनु, ज्यों देही बिनु सीस।

इस तरह सूरदास ने पदों में एक ही भाव को एक पद में स्थान दिया है जिससे उनके द्वारा रचित प्रत्येक पद पाठक को आनन्द से भर देता है।

5 संक्षिप्तता

संक्षिप्तता गीतिकाव्य की विशेषता माना जाता है। अनावश्यक विस्तार गीति काव्य के प्रभाव को नष्ट कर देता है। सूरदास ने इस विशेषता का ध्यान रखा है। उनके पद आकार की दृष्टि से कुछ लघु दिखते है परन्तु फिर भी अत्यन्त प्रभाव शाली सिद्ध हुए हैं–

विलग जनि मानौ हमरी बात।
डरपति वचन कठोर कहति, मति बिनु पतियों उठि जात।
जेा कोउ कहत जरे अपने कछु फिरि पाछे पछितात।
जे प्रसाद पावत तुम उधो कृस्न नाम लै खात।[6]

6 रसात्मकता

गीतिकाव्य में मुक्तक की अपेक्षा रस का परिपाक कम होता है परन्तु सूरदास ने अपने काव्य कौशल से अपने पदों को सुन्दर बना दिया है। उदाहरण स्वरूप सूरदास ने अपनी उक्तिवैचित्र्य से भ्रमर गीत के पदों में रसात्मकता उत्पन्न कर दी है। सूरदास ने प्रायः सभी रसों को प्रवाहित किया है। फिर भी श्रृंगार और वात्सल्य को उन्होंने अधिक महत्व दिया है। वात्सल्य रस का एक उदाहरण देखिए–

नीके रहियो जसुमत मैया।
आवैगैं दिन चारि पांच में हम हलधर दोउ भैया।
जा दिन तैं तुम तैं बिछुरे काहु न कहयो कन्हैया।
कबहुं प्रात न कियो कलेबा, सांझ न पीन्ही छैया।
बंसी बेनु संभारि राखियो और अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका कछुक खिलौनो मेरो।[7]

विप्रलम्भ श्रृंगार भी भ्रमर गीत में मिलता है। यहां विरह की सभी दशाओं का सजीव वर्णन किया गया है। गोपियों के विरह वर्णन का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

निस दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस रितु हम पैद्व जब तै स्याम सिधारे।
दृग अंजन लागत नहि कबहुं, उर कपोल भए कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूं उर बिच बहत पनारे।

7 कोमलकान्त पदावली

गीतिकाव्य में गीतकार को सीमित आकार में अपने भाव अभिव्यक्त करने अनिवार्य होते हैं। इसके लिए वह चुनचुन कर शब्द विधान करता है अथवा चित्रविधान कर के अपने भाव को गहराई तक अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। इस के लिए कवि कोमल कान्त शब्दावली, स्वरमैत्री, तथा व्यंजनमैत्री का सायास प्रयास करता है। सूरदास ने इस प्रयास में एक और विशेषता जोड दी है वह है बोल चाल के शब्दों का प्रयोग। उदाहरण देखिए–

खेलत मैं को काको गुसैयां।
हरि हारे जीते सुदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां।
जाति–पांति हमतै बड नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।
अति अधिकार जनावत यातै जातै अधिक तुम्हारी गैयां।

सूरदास की भाषा ब्रज ही है। उन्होने उसे सजाया और संवारा है तथा साहित्यिक रूप प्रदान किया है। इस तरह उपरोक्त विवेचन यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि सूरदास गीति काव्य के अनन्य कलाकार और अद्‌भुत कवि हैं। उन्होंने गीतिकाव्य को उसके शिखर पर पहुंचा दिया है।

सन्दर्भ सूचि

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भ्रमर गीत सार पृ56
2. उपरोक्त पृ76
3. उपरोक्त पृ 78
4. उपरोक्त पृ 112
5. उपरोक्त पृ87
6. भ्रमर गीत पद 21
7. उपरोक्त पद 10 राग सारंग